मध्यकालीन साहित्य चिंतन

विविध आयाम

संपादक

डॉ. दर्शन पाण्डेय

'साहित्य समाज का
सार्थकता प्रत्येक युग
जिस प्रकार की परि
प्रभाव-स्वरूप साहित्य
कभी-कभी परिस्थिति
प्रतिक्रियावादी साहित्य
ऐसा कम ही दृष्टिगत
इतिहास क्रम पर दृष्टि
कि प्रत्येक युग का
परिस्थितियों की ही
भक्तिकाल, रीतिकाल
साहित्य का जो स्वरूप,
होता है, वह तत्कालीन
परिणाम है। यह पुस्तक
के विविध आयामों प
मध्यकाल के दोनों पक्ष
मिलाकर देखें तो इस
इतिहास अत्यंत समृद्ध
विवेचन विश्लेषण इस
विद्वानों तथा शोधकर्ता
विभिन्न आलोचकों,
शोधकर्ताओं द्वारा अब
विविध पक्षों पर अनेक
वैसे देखा जाए तो भक्ति
में नवीन दृष्टियों से निरं
इनकी नव व्याख्याएँ भी
तय है की मध्यकाली
विवेचन-विश्लेषण की अ
हो सकती हैं। इस रूप में
एक कड़ी कही जा सकती

प्रकाशक :

संजय प्रकाशन

4378/4-B, 209 जे.एम.डी. हाऊस,
मुरारीलाल स्ट्रीट, अंसारी रोड,
दरियागंज-110002
फोन : 011-23245808, 41564415
मो. : 09313438740
E-mail : sanjayprakashan@yahoo.in

© संपादक

ISBN : 978-93-88107-74-7

Price : ₹ 650

प्रथम संस्करण : 2020

टाईप सैटिंग
क्रियेटिव ग्राफिक्स
दिल्ली-53

मुद्रक
रोशन ऑफसेट
दिल्ली

विषय-सूची

1. भक्तिकाव्य की आलोचना दृष्टि: एक पुनर्मूल्यांकन — 1
   अरविन्द कुमार यादव
2. भक्तिकाल : एक नवजागरण के रूप में — 10
   डॉ० गुंजन
3. भक्तिकाव्य का समाज दर्शन — 15
   प्रो० नागरे संतोष साहेबराव
4. भक्ति काव्य में मानवतावाद — 19
   प्रो० रामहरी काकडे
5. भक्तिकालीन काव्य में अवतारवाद — 24
   डॉ० साधना तोमर
6. स्त्री-विमर्श का उद्गम स्रोत–भक्ति काल — 30
   तारो सिन्दिक
7. मध्ययुगीन नारी संतों की साहित्यिक साधना — 37
   डॉ० मधु वशिष्ठ
8. मध्यकालीन हिन्दी संत काव्य की प्रासंगिकता — 44
   प्रो० बालाजी गरड
9. साम्प्रदायिक सद्भाव और कबीर का काव्य — 48
   अब्दुल लतीफ़
10. कबीर का गुरु विवेक — 55
    डॉ० अमित सिंह

4

भक्ति काव्य में मानवतावाद

प्रो० रामहरी काकडे

मानवतावाद के केंद्र में मनुष्य हैं। भले ही आधुनिक काल में इसे एक वाद के रूप में मान्यता मिली हो। लेकिन इस विचार का संबंध मनुष्य के चिंतन से रहा है। हर चिंतन की पृष्ठभूमि मानव-कल्याण ही है। प्राचीन काल से इसे एक मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। मनुष्य को सुखी बनाना, उसे सब प्रकार की आर्थिक एवं राजनीतिक गुलामी से मुक्त करना और रोग-शोक के चंगुल से छुड़ाना ही सब प्रकार के शास्त्रों और विद्याओं का प्रधान एवं महत्वपूर्ण लक्ष्य रहा है। भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में भी यही मानवतावादी विचार कार्यरत दिखाई देता है। भक्ति आंदोलन के पूर्व धर्म अपनी सार्थकता खो गया था। वह अपनी जड़वादिता के कारण सामान्य मनुष्य के शोषण का शस्त्र बन गया था। धर्म के नाम पर समाज में विषमता फैलाकर अमानवीय व्यवहार हो रहा था। सभी ओर पाखण्डियों का बोलबाला हो गया था। सत्य की आवाज लुप्त हो गई थी। इस पृष्ठभूमि में ईसा की 7 वीं शती में दक्षिण में आलवार भक्तों का अविर्भाव हो गया। आचार्य शुक्ल ने इसकी संख्या बारह बताई है। इन भक्तों ने पहली बार धर्म के जड़त्व को नष्ट करने का प्रयास किया। रुढ़िवादिता को नकार कर लोकभाषा में अपने आराध्य की आराधना की। इन आलवरों में शूद्रों के साथ 'आंडाल' नामक स्त्री भी थी। भक्ति की मानवीयता के संदर्भ में यह घटना महत्वपूर्ण है। इन भक्त कवियों के पदों का संकलन रामानुजाचार्य ने "दिव्य प्रबन्धम्" नाम से किया। आगे चलकर रामानंद ने इसी मानवीय दृष्टिकोण को ग्रहण कर विभिन्न जाति एवं धर्म के लोगों को अपना शिष्य बनाया। जिसमें कबीर, सेना, धन्ना एवं पीपा इनका अंतर्भाव होता है। इनमें इन शूद्रों के अतिरिक्त पदमावती एवं सूरसरी यह स्त्रियाँ भी थीं।" जब रामानंद ने अपनी शिष्य परम्परा में उस वर्ग के व्यक्तियों का समावेश करना आरंभ किया जो सामाजिक स्तर के नाम पर निम्नवर्ग के समझे जाते थे। तव भक्ति का पथ यथार्थ रूप से मानवतावादी दृष्टि से प्रशस्त हुआ।"[1]

इसी समय देश के विभिन्न भागों में भक्ति को मानवीय दृष्टि से देखना आरंभ हो गया। महाराष्ट्र में नामदेव, ज्ञानदेव, मुक्ताबाई, गुजरात में नरसी मेहता, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु और असम में शंकरदेव भक्तिमार्ग सर्व जनसुलभ बना रहे थे। उत्तरी भारत में वल्लभाचार्य के अष्टछाप में कृष्णदास, चतुर्भुजदास एवं कुंभनदास जैसे शूद्रों का अंतर्भाव होना मानवीय दृष्टि से महत्वपूर्ण घटना थी। "यहाँ से हिन्दी साहित्य नये मोड़ पर खड़ा हो जाता है और यद्यपि वह पुरानी परम्परा से एकदम विच्युत नहीं हो जाता, तथापि उसमें शोभा के प्रति रुग्ण आकर्षण का अभाव है। रूप और शोभा में वह दैवी ज्योति देख सकता है और अपने पाठकों को उँचे धरातल पर बैठकर तलदेश की गंदगी से दूर रख सकता है। इस साहित्य में कृत्रिमता का अभाव है और सहज- सरल मानव-जीवन के प्रति आस्था है।"[2]

इसी मानवतावादी पृष्ठभूमि के आधार पर भक्तिकाव्य की इमारत खडी हुई है। जिसमें अंत:करण की शुद्धता, सत्य, त्याग, शांति, क्षमा, धैर्य, तप, कर्म-प्रतिष्ठा आदि मानवीय मूल्यों की स्थापना है। तत्कालीन समाज में सगुन-निर्गुण, शैव-वैष्णव-शाक्त आदि में संघर्ष चल रहा था। तुलसीदास ने मानव-कल्याण के लिए इनमें समन्वय स्थापित किया। वे "रामचरितमानस" में राम और सीता को क्रमश: शिव और पार्वती की पूजा कराते हुए चित्रित करते हैं। वहीं दूसरी और शिव-पार्वती को भी राम-सीता के प्रति भक्ति भावना प्रगट कराते हैं।

मध्यकाल के सभी भक्त कवियों ने जीव-हिंसा का विरोध किया है। इनका हिंसा विरोध केवल मनुष्य तक सीमित न होकर संपूर्ण जीव-सृष्टि तक व्याप्त है। ये कवि तो शाब्दिक हिंसा का भी विरोध करते हैं। तभी तो किसी धर्म या पंथ को न मानने वाले कबीर अहिंसक वैष्णवों की स्तुति करते हैं-

"साकत बांमण मति मिलै, बैसनों मिलै चाण्डाल।"

वहीं दूसरी और नरसी मेहता वैष्णव का लक्षण बताते हुए कहते हैं-

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीर पराई जाणे रे।
पर दुखे उपकार करे तो ये, मन अभिमान ना आणे रे।।

भक्त कवियों ने सभी प्रकार की ऊँच-नीच भावना का या असमानता का विरोध किया है। भक्ति के क्षेत्र में अंतकरण की शुद्धता के आधार पर कोई भी ईश्वर भक्ति कर सकता है। फिर वह शूद्र हो या स्त्री इससे भक्तिमार्ग में कोई अंतर नहीं पड़ता। तभी तो आंडाल से मीराबाई तक स्त्रियाँ भी भक्ति के क्षेत्र में दिखाई देती हैं। तुलसीदास भी "रामचरितमानस" में नायक राम को शूद्र स्त्री शबरी के घर में

ा मानवीय दृष्टि से देखना आरंभ
गुजरात में नरसी मेहता, बंगाल में
सर्व जनसुलभ बना रहे थे। उत्तरी
चतुर्भुजदास एवं कुंभनदास जैसे
पूर्ण घटना थी। "यहाँ से हिन्दी
ापि वह पुरानी परम्परा से एकदम
रुग्ण आकर्षण का अभाव है। रूप
अपने पाठकों को उँचे धरातल पर
स साहित्य में कृत्रिमता का अभाव
था है।"[2]

क्तिकाव्य की इमारत खडी हुई है।
ति, क्षमा, धैर्य, तप, कर्म-प्रतिष्ठा
न समाज में सगुन-निर्गुण, शैव-
सीदास ने मानव-कल्याण के लिए
नस" में राम और सीता को क्रमश:
ते हैं। वहीं दूसरी और शिव-पार्वती
कराते हैं।

-हिंसा का विरोध किया है। इनका
संपूर्ण जीव-सृष्टि तक व्याप्त है। ये
। तभी तो किसी धर्म या पंथ को न
करते हैं-

सनों मिलै चाण्डाल।"

लक्षण बताते हुए कहते हैं-

ो पीर पराई जाणे रे।
अभिमान ना आणे रे।।

-नीच भावना का या असमानता का
की शुद्धता के आधार पर कोई भी
या स्त्री इससे भक्तिमार्ग में कोई अंतर
स्त्रियाँ भी भक्ति के क्षेत्र में दिखाई देती
क राम को शूद्र स्त्री शबरी के घर में

जलपान कराते हैं। क्योंकि शबरी हृदय से राम की भक्ति कर रही थी। इतना ही नहीं तो तुलसी के राम वनवास में कोल-किरात आदि वन्य-जातियों के साथ रहते हैं। चित्रकूट प्रसंग में यही लोग हृदय से अयोध्यावासियों का स्वागत करते हैं। केवट अपनी निम्न जाति के कारण दूर रहकर ही गुरू वशिष्ठ को प्रणाम करते हैं, तब वशिष्ठ उसे प्रेम से गले लगाते हैं-

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। किन्हू दूरी ते दण्ड प्रनामू।।
राम सखा रिषि बरबस भेटा। जनु महि लुढ़त सनेह समेटा।।

कबीर भी वर्ण,जाति या वर्ग के आधार पर किये जाने वाले भेदभाव के विरोधी थे। कबीर मानवता की एक ही जात मानते हैं। बाकी भेद पण्डितों एवं मुल्ला-मौलवी दवारा अपनी स्वार्थ की पूर्ति के लिए फैलाए हैं। ज्ञान एवं हृदय को भक्ति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार साधू की जाति या धर्म महत्वपूर्ण न होकर उसका ज्ञान महत्वपूर्ण होता है-

जाति न पूछो साधु की, पूछ लिज्यो ज्ञान।
मोल करो तलवार को, पड़ी रहने दो म्यान।।

मीराबाई भी हृदय की इसी शुद्धता के कारण लोकलाज एवं लोकभय का त्याग कर कृष्णभक्ति में लीन हो गई। सहृदयता के कारण ही मनुष्य की पहचान मनुष्यता से होती है। इसी मनुष्यत्व की पहचान भक्तिकाव्य है। भक्तकवियों ने जहाँ एक ओर मनुष्य को मनुष्यत्व दिलाया वहीं दूसरी ओर ईश्वर का मानवीकरण करके उसे मानव में उपस्थित किया। कृष्ण काव्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। हृदय की शुद्धता पर सर्वाधिक बल सूरदास ने दिया है। इनका काव्य शास्त्र एवं सत्ता के आतंक से मुक्त मानवता का काव्य है। तुलसी के राम भी अपना देवत्व त्यागकर सामान्य मनुष्य के समान यातनाओं का सामना करते हैं।" उनकी अलौकिकता हमारी नगण्यता की नहीं, बल्कि हमारी ग्राहिका शक्ति को उत्तेजित करती है। हम उसी मार्ग पर चलने को आतुर हो जाते हैं। भरत, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद, सीता, कौशल्या जैसे पात्र हमें प्रेरणा देते हैं। मानव-जीवन के किसी न किसी अंग पर वे प्रकाश डालते हैं। या फिर उनसे सामाजिक असंगति की तीव्र आलोचना व्यंजित होती है, या फिर वे मनुष्य और मनुष्य के बीच सद्भावना और पर -दुख:-कातरता की सदवृत्तियों को जगाते हैं।"[3]

मनुष्य की मनुष्यत्व से पहचान के लिए हृदय की शुद्धता आवश्यक है। पर तत्कालीन असामाजिक तत्व पाखण्ड एवं आवडंबरों को ही ईश्वराधना मान बैठे थे।

वे हृदय की शुद्धता की जगह कर्मकांड को प्रधान मानते थे। जप-तप, व्रत, उपवास के आधार पर ईश्वर को पाने की डींग हाँकने लगे थे। जिससे भक्ति का मार्ग अंधकारमय हो गया था। अत: भक्त कवियों ने इस पाखण्ड एवं बाह्य आडंबरों का तीव्र विरोध किया। इसमें कबीर सबसे आगे खड़े थे। उनकी घुमक्कड प्रवृत्ति के कारण सभी धर्मों एवं पंथों की कुरीतियों का ज्ञान उन्हें था। तभी तो वह कहते हैं-

अरे इन दोउन राह न पाई,
हिंदूअन आपन करे बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोवै, यह देखी हिंदुआई।।
मुसलमान के पीर-औलिया, मुरगा-मुरगी खाई।
खाला के ही बेटी ब्याहे, घरहिं में करै सगाई।।

सूरदास भी हृदय की शुद्धता को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। वे वेद और शास्त्रीय ज्ञान से अधिक सरल हृदय की भक्ति को मानते हैं। अगर कृष्ण को पाना है तो बाह्यचार एवं पाखण्ड से नहीं पा सकते। 'भ्रमरगीत सार' में भी उद्धव सहृदय गोपियों के भक्ति के सामने पराजित होकर सगुन भक्ति को अपनाते हैं। कुब्जा भी हृदय के आधार पर कृष्ण को प्राप्त करती है।

कर्म की प्रतिष्ठा भक्तिकाव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है। निर्गुण सम्प्रदाय के अधिकतर कवि अपनी गृहस्थी संभालकर एवं जीविकार्पोजन कर ही भक्तिभावना या ईश्वर उपासना कर रहे थे। वे वैराग्य का प्रतिपादन नहीं करते बल्कि श्रम की प्रतिष्ठा समझाते हैं। कबीर, सेना, धन्ना, पीपा आदि कवि अपना परम्परागत व्यवसाय सँभालकर ही अपने आराध्य की आराधना करते हैं। भक्तिकाल राजनीतिक दृष्टि से राजा एवं सामंतो का काल था। यहाँ पर हर राजा प्रजा पर अपना ईश्वरत्व प्रस्थापित करना चाहता था। लेकिन भक्त कवि तो केवल अपने आराध्य को ही राजा मानते थे। इसमें भक्तकवियों का सामंतवाद विरोध ही दिखाई देता है। कुंभनदास को जब मुग़ल बादशाह दिल्ली बुलाते हैं तब कुंभनदास यह कहते हैं-

संतन को कहाँ सिकरी सो काम, आवत जावत पनहिया टूटै।
बिसर गयो हरिनाम। जिनके मुख देखत दुख उपजत।
तिनको करनो पड़ो प्रनाम।।

इनका विरोध केवल यहीं तक न रहकर इन्होंने संपूर्ण मानवजाति के लिए एक ईश्वरी राज की कल्पना की है। जिसे तुलसी "रामराज्य" कहते हैं। तो जायसी 'सिंहलद्वीप' सूरदास 'गोलोक' एवं रैदास 'बेगमपुर' कहते हैं।

भक्तिकाव्य मानवता की प्रतिष्ठापना करता है। इसका प्रधान लक्ष्य मानव की दास्यता से मुक्ति कर ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखाना है। इसीलिए सगुन कवियों ने भक्तों के रक्षनार्थ भगवान के अवतारों की कल्पना कर सामान्यजन को यातनाओं से मुक्ति देने का प्रयास किया है। तुलसी ने लोकमंगल और सांस्कृतिक संदर्भों में मानवतावादी दृष्टिकोण का चित्रण किया है। वे राजा का लक्षण बताते हैं-

मुखिया मुखु सो चाहिए, खान पान कहुँ एक।
पालई पोषई सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि भक्तिकाव्य का मूल आधार मानवतावाद रहा है। भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि में भी मानवतावादी विचारधारा सक्रिय रही है। ये भक्त कवि समाज के निम्न वर्ग से आये हुए थे। अगर कोई उच्च वर्ण का हो तो भी केवल जन्म से था। असलियत में उसे भी विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था। इन्होंने भक्ति के क्षेत्र में जातिगत या वर्णगत भेदभाव को नकार दिया। अपने आराध्य को देवत्व के धरातल से उतारकर मनुष्यत्व के धरातल पर लाकर सर्वजन सुलभ बनाया। आराध्य की आराधना के लिए जनभाषा का प्रयोग किया। इनका लक्ष्य केवल भक्ति न होकर समाज-सुधार या मानव जाति का कल्याण था। इसीलिए हम कह सकते हैं कि भक्ति-साहित्य का प्रधान स्वर मानवतावाद है।

संदर्भ-संकेत

1. सं. विजेयन्द्र स्नातक: कबीर पृ. 245
2. आ.हजारीप्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य: उद्भव एवं विकास पृ. 66
3. वही पृ.133
4. सं.हरीशचंद्र अग्रवाल: कबीर का महत्व
5. सं.विमलेश कांति वर्मा एवं मालती : भाषा साहित्य और संस्कृति
6. आ.रामचंद्र शुक्ल:सूरदास
7. आ.रामचंद्र शुक्ल: गोस्वामी तुलसीदास